भारतीय अर्थव्यवस्था और इसके वित्तीय क्षेत्र* की झाँकी

- या.वे.रेड्डी

मैं अपने मित्र चेयरमैन इग्नातियेव से प्रायः महीने में एक बार बीआईएस या जी 20 या आईएमएफ अथवा अन्य अंतरराष्ट्रीय सेमिनारों में मिलता रहता हूँ । जून के प्रारंभ में ब्यूनस एयर्स में उनका रूसी अर्थव्यवस्था की वर्तमान अवस्था पर दिया गया भाषण काफी सराहनीय था, क्योंकि उन्होंने न केवल हाल के वर्षों में रूसी अर्थव्यवस्था की उपलब्धियों की झाँकी प्रस्तुत की, वरन् रूसी अर्थव्यवस्था के प्रशंसनीय भविष्य की ओर भी इशारा किया था ।

हम, भारत में रहते हुए, हमेशा रूस के साथ प्रौद्योगिकी, व्यापार, संस्कृति और राजनय के क्षेत्र में विशेष रूप से जुड़े हुए हैं । हाल के वर्षों में सहयोग का यह रिश्ता द्विपक्षीय और बहुपक्षीय, दोनों ही दृष्टि से और अधिक प्रगाढ़ हुआ है ।

मेरे निरंतर अनुरोध पर चेयरमैन इग्नातियेव जनवरी में भारत आये और उन्होंने भारतीय रिज़र्व बैंक में भाषण दिया । हमने वाग्विलास का एक सत्र आयोजित किया, जिसमें उन्होंने अनेक भेदक प्रश्नों का बेबाक एवं पेशेवर ढंग से उत्तर दिया । हमें उम्मीद है कि उनके भाषण को भारत में अंग्रेजी में प्रकाशित करने की अनुमति चेयरमैन महोदय से मिल जायेगी ।

आज मैं अपने भाषण में भारतीय रिज़र्व बैंक का संक्षिप्त परिचय देना चाहता हूँ और उसके बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की एक झाँकी प्रस्तुत करना चाहता हूँ । मैं भारत के वित्तीय क्षेत्र का अधिक विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत करूँगा, खासकर बैंकिंग क्षेत्र और वित्तीय बाजारों के बारे में ।

भारतीय रिज़र्व बैंक का परिचय

रिज़र्व बैंक की स्थापना भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के अंतर्गत अप्रैल 1, 1935 को प्राइवेट शेयरधारकों के बैंक के रूप में की गयी थी, लेकिन वर्ष 1949 में इसके राष्ट्रीयकरण के बाद से इस पर भारत सरकार का पूर्ण

* डॉ. या.वे. रेड्डी, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा सेंट्रल बैंक ऑफ द रशियन फेडरेशन में जुलाई 2007 को दिया गया भाषण।

स्वामित्व है । रिज़र्व बैंक की प्रस्तावना में इसके मूल कार्यों का वर्णन ''बैंक नोटों के निर्गम को नियंत्रित करने और भारत में मौद्रिक स्थिरता सुनिश्चित करने की दृष्टि से प्रारक्षित निधि रखने तथा सामान्यतः देश की करेंसी और ऋण प्रणाली का परिचालन इसके फायदे के लिए करने'' के रूप में किया गया है । इस प्रकार, अनेक देशों में वर्तमान प्रवृत्ति के विपरीत यहाँ मूल्य-स्थिरता के लिए अथवा औपचारिक मुद्रास्फीति का लक्ष्य निर्धारित करने के लिए कोई स्पष्ट अधिदेश नहीं है, लेकिन जो अधिदेश है वह अमेरिका के फेडरल रिज़र्व के समान ही प्रतीत होता है । भारत में मौद्रिक नीति का दोहरा उद्देश्य वर्षों से मूल्य स्थिरता बनाये रखने और विकास-प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने के लिए पर्याप्त ऋण-प्रवाह सुनिश्चित करने के रूप में विकसित हुआ है । दोनों उद्देश्यों के बीच विद्यमान परिस्थितियों के अनुसार आपेक्षिक जोर दिया जाता है और उसे समय-समय पर रिज़र्व बैंक द्वारा जारी किये गये नीति संबंधी वक्तव्यों में स्पष्ट किया जाता है । अधिदेश में समष्टि आर्थिक और वित्तीय स्थिरता पर विचार को भी शामिल किया गया है । रिज़र्व बैंक को विदेशी मुद्रा प्रारक्षित निधियों के प्रबंध का कार्य भी सौंपा गया है (जिसमें स्वर्ण-धारण भी शामिल है), जो इसके तुलनपत्र में प्रतिबिंबित होता है ।

जबकि रिज़र्व बैंक अनिवार्यतः मौद्रिक प्राधिकारी है, इसकी स्थापना से संबंधित संविधि में अधिदेश दिया गया है कि यह भारत सरकार के बाजार उधार कार्यक्रम के प्रबंधक का कार्य करेगा और सरकार का बैंकर होगा ।

बैंकों के विनियमन और पर्यवेक्षण का कार्य रिज़र्व बैंक को वर्ष 1949 में अधिनियमित एक अलग विधान द्वारा सौंपा गया है, जबकि गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) के विनियमन का कार्य इसे भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में हाल में किये गये एक संशोधन द्वारा सौंपा गया है । मुद्रा बाजारों, सरकारी प्रतिभूति बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार और स्वर्ण का विनियमन करने की शक्तियाँ भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम से व्युत्पन्न हैं और प्रतिभूति संविदा (विनियमन) अधिनियम के अंतर्गत सरकारी अधिसूचना के माध्यम से स्पष्ट रूप से सौंपी गयी हैं ।

बाह्य क्षेत्र के चालू खाता और पूँजीगत लेखा संबंधी लेनदेन को विनियमित करने का कार्य रिज़र्व बैंक को वर्ष 1999 में एक अन्य संविधि द्वारा सौंपा गया, जिसने वर्ष 1973 की संविधि को प्रतिस्थापित किया था ।

करेंसी जारी करने के अतिरिक्त रिज़र्व बैंक को सिक्कों के वितरण से संबंधित दायित्व भी सौंपा गया है ।

रिज़र्व बैंक को अनेक सांविधिक निकायों, यथा, सरकारी क्षेत्र के बैंकों, कृषि, गृह-निर्माण एवं निक्षेप बीमा, आदि, को नियंत्रित करने वाली विकास वित्त संस्थाओं में कुछ दायित्व सौंपे गये हैं ।

रिज़र्व बैंक के कार्यों पर केंद्रीय निदेशक मंडल द्वारा नियंत्रण किया जाता है, जिसमें गवर्नर और चार उप गवर्नरों के अतिरिक्त चौदह गैर-कार्यपालक, स्वतंत्र निदेशक होते हैं, जिन्हें सरकार द्वारा नामित किया जाता है । इसके अतिरिक्त, निदेशक मंडल में एक सरकारी अधिकारी को भी नामित किया जाता है, जो बोर्ड की बैठकों भाग लेता है, लेकिन वोट नहीं दे सकता है ।

रिज़र्व बैंक के 19 क्षेत्रीय कार्यालय और 4 उप-कार्यालय हैं, जो अधिकांशतः राज्यों की राजधानियों में हैं। रिज़र्व बैंक राज्य सरकारों (अर्थात् भारतीय परिसंघ बनाने वाले प्रांतों) का ऋण-प्रबंधक और बैंकर है ।

रिज़र्व बैंक केंद्र सरकार और राज्य सरकारों को परामर्श देता है, खासकर वित्तीय क्षेत्र सुधारों के संबंध में।

संक्षेप में, रिज़र्व बैंक को मौद्रिक प्रबंधन के अतिरिक्त अनेक प्रकार के कार्य सौंपे गये हैं । प्रत्येक कार्य का संपादन

करने के लिए संविधि और कार्यमूलक अंश में यह अपेक्षा की गयी है कि रिज़र्व बैंक सरकार की तुलना में स्वायत्तता और समन्वय का परिवर्ती अंश में प्रयोग करे । सरकार के साथ इसके संबंध को नियंत्रित करने वाले तीन प्रधान लक्षण हैं - परिचालन में स्वायत्तता; नीतियों में सामंजस्य; और संरचनात्मक रूपांतरण में समन्वय।

भारतीय अर्थव्यवस्था का कार्य-संपादन : स्थिरता के साथ स्वतः शक्तिवर्द्धक विकास

कभी-कभी भारत के बारे में कहा जाता है कि वह दुबारा उभरती हुई अर्थव्यवस्था है । 18वीं शताब्दी से यह भौगोलिक क्षेत्र विश्व के एक चौथाई उत्पादन के लिए जिम्मेवार रहा है - लेकिन अब यह अतीत की बात हो गयी है । भारत के भौगोलिक क्षेत्र में जीडीपी की वार्षिक वृद्धि दर 20वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में औसतन लगभग 0.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहने और प्रति व्यक्ति आय औसतन लगभग 0.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहने का अनुमान किया गया है । स्वतंत्र भारत की अर्थव्यवस्था, जो समसामयिक दिलचस्पी का विषय है, द्वितीय विश्व युद्ध, देश-विभाजन के आघात, 500 से ऊपर रजवाड़ों के एकीकरण और जीडीपी के न्यून स्तर के ओवरहैंग मुद्दों पर निर्मित करनी पड़ी थी। भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्ष 1950 से 1980 के दौरान 3.5 प्रतिशत की वार्षिक औसत वृद्धि दर 1980 और 1990 के दशकों में तेज होकर लगभग 6.0 प्रतिशत हो गयी । पिछले चार वर्षों में (वर्ष 2003-04 से 2006-07), भारतीय अर्थव्यवस्था में 8.6 प्रतिशत तक वृद्धि हुई । वर्ष 2005-06 और 2006-07 में इसकी ऊँची वृद्धि दर क्रमशः 9.0 और 9.4 प्रतिशत पर रही । इस प्रकार इसके स्वतः गतिवर्द्धक विकास के ठोस साक्ष्य मौजूद हैं ।

शताब्दी के चौथाई से भी अधिक हिस्से में उच्च विकास के चरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता है आघातों को झेल जाने की शक्ति और पर्याप्त स्थिरता का होना । हमने 1990 के दशक के प्रारंभ में खाड़ी युद्ध के कारण उत्पन्न गंभीर भुगतान संतुलन के संकट का सामना किया है। इस संकट के परिणामस्वरूप विश्वसनीय समष्टि आर्थिक संरचनात्मक और स्थिरीकरण कार्यक्रम आरंभ किये गये। बाद के वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्वी एशिया संकट, पोखरण के बाद की प्रतिबंधात्मक स्थिति जैसे परिदृश्य और मई-जून 1999 के दौरान सीमा-संघर्ष से उत्पन्न आघातों के प्रतिकूल संसर्गात्मक प्रभाव से सफलतापूर्वक बच पाने में समर्थ हुई। इस संदर्भ में देखने पर, यह तगड़ा समष्टि आर्थिक कार्यसंपादन, हाल के कच्चे तेल और खाद्यान्न संकट के होने पर भी, भारतीय अर्थव्यवस्था के स्पंदन और समुत्थान-शक्ति का प्रदर्शन करता है ।

भारत में औसत बचत दर 1950 के दशक में 10 प्रतिशत थी, जो 1970 के दशक में बढ़कर 17.5 प्रतिशत और पुनः 1990 के दशक में बढ़कर 23.4 प्रतिशत हो गयी । वर्ष 2005-06 में बचत दर 32.4 प्रतिशत थी । हाल के वर्षों में आर्थिक कार्यकलाप की सुदृढ़ता को सकल घरेलू निवेश की दरों में सतत वृद्धि ने समर्थन दिया, जो वर्ष 2001-02 में जीडीपी के 22.9 प्रतिशत से लेकर वर्ष 2005-06 तक 33.8 प्रतिशत हो गयी । यह भी नोट किया जा सकता है कि इस अवधि के दौरान देश में 95 प्रतिशत से भी अधिक निवेशों का वित्तपोषण घरेलू बचतों द्वारा किया गया ।

मूल्य स्थिरता के मोर्चे पर, भारत का कार्य संपादन काफी अच्छा रहा है । स्वतंत्रता के बाद से, मुद्रास्फीति की दर, थोक मूल्य सूचकांक (डब्लूपीआई) के संदर्भ में, पचास वर्षों में केवल पाँच वर्ष 15 प्रतिशत से ऊँची थी । पचास वर्षों में से छत्तीस वर्ष मुद्रा स्फीति एक अंक में बनी रही और अधिकांश अवसरों पर ऊँची मुद्रास्फीति - खाद्यान्न या तेल - के आघातों के चलते हुई । अनेक विकासशील देशों की तुलना में मुद्रास्फीति की सहनीय सीमा का स्तर खासकर देश में लोकतांत्रिक दबावों के कारण कम रहा है।

मुद्रास्फीति की दर 1950 के दशक के दौरान वार्षिक औसत 1.7 प्रतिशत से स्थिर गति से बढ़ते हुए 1960 के दशक के दौरान 6.4 प्रतिशत और पुनः 1970 के दशक के दौरान 9.0 प्रतिशत हो गयी, लेकिन 1980 के दशक में यह सीमांत रूप से नरम होकर 8.0 प्रतिशत पर आ गयी । तथापि, मुद्रास्फीति की दर वर्ष 1990-95 के दौरान औसत 11.0 प्रतिशत से घटकर 1990 के दशक (1995-2000) के उत्तरार्द्ध में 5.3 प्रतिशत और पुनः वर्ष 2003-07 के दौरान 4.9 प्रतिशत हो गयी ।

अभी हाल में वर्ष 2006-07 के दौरान डब्लूपीआई आधारित मुद्रास्फीति दर मार्च 2006 के अंत में 4.1 प्रतिशत से बढ़कर जनवरी 2007 के अंत में 6.7 प्रतिशत की अंतर्वर्षीय ऊँचाई पर पहुँच गयी और बाद वाले सप्ताहों में 6.1-6.6 प्रतिशत की सीमा में दृढ़ बनी रही, लेकिन वित्तीय वर्ष केअंत में (अर्थात् मार्च 31, 2007 को) यह नरम होकर 5.9 प्रतिशत पर आ गयी । तबसे मुद्रास्फीति की दर में और नरमी आयी है और जून 16, 2007 को डब्लूपीआई मुद्रास्फीति की दर 4.0 प्रतिशत थी ।

हाल की अवधि में, राजकोषीय स्थिति में काफी सुधार हुआ है । 1980 के दशक में जीडीपी के प्रतिशत के रूप में केंद्र सरकार का सकल राजकोषीय घाटा 6.8 प्रतिशत था, जबकि 1970 के दशक में यह 3.8 प्रतिशत रहा था । राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंध अधिनियम, 2003 के अंतर्गत भारत सरकार वर्ष 2004-05 से नियम आधारित राजकोषीय समेकन के रास्ते पर चल रही है, जिसके अंतर्गत समय-विशिष्ट लक्ष्यों को अनिवार्य किया गया है । लक्ष्य का अंतर्निहित प्रयोजन सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में सकल राजकोषीय घाटा (जीएफडी) के अनुपात को कम करते हुए उसे वर्ष 2008-09 तक 3 प्रतिशत पर ले आना है । इसके अतिरिक्त जीडीपी में राजस्व घाटा (आरडी) का अनुपात वर्ष 2008-09 तक शून्य कर दिये जाने का लक्ष्य रखा गया है, ताकि उधार से जुटाये गये संसाधनों का उपयोग केवल पूँजीगत व्यय को पूरा करने के लिए किया जाये। अब तक लक्ष्यित राजकोषीय समेकन संतोषजनक रहा है और बजट में वर्ष 2007-08 में जीएफडी/जीडीपी तथा आरडी/जीडीपी अनुपात कम करके क्रमशः 3.3 प्रतिशत और 1.5 प्रतिशत पर ले आने की बात कही गयी है । इसका उद्देश्य यह है कि राजकोषीय जवाबदेही अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित लक्ष्य को वर्ष 2008-09 तक पूरा कर लिया जाये ।

वर्ष 1950-51 से औसत चालू खाता घाटा जीडीपी के लगभग एक प्रतिशत पर रहा है । इस अवधि के दौरान, सिवाय 11 वर्षों के लिए, जब चालू खाता में सीमांत रूप से अधिशेष की स्थिति थी, शेष वर्षों के दौरान हमारा घाटा संयत रहा । 1990 के दशक के प्रारंभ में भुगतान-संतुलन का संकट उत्पन्न होने के बाद अनेक स्थिरीकरण और संरचनात्मक सुधार के उपाय किये गये ।

बाह्य क्षेत्र के संकेतक यह दर्शाते हैं कि पिछले दशक में पर्याप्त धारणीयता का स्तर प्राप्त किया गया । सेवा और विप्रेषण के निर्यात में सतत वृद्धि ने अदृश्य लेखा में अधिशेष की उत्साहजनक स्थिति बनाये रखी है, जिसने व्यापार घाटे के बड़े भाग के वित्तपोषण को संभव बनाया है । पूँजी प्रवाह भी उत्साहवर्द्धक रहा है, जिसके चलते विदेशी मुद्रा प्रारक्षित निधि में निरंतर वृद्धि हुई है । वणिक माल व्यापार घाटा इस समय जीडीपी के 7.0 प्रतिशत पर है; तथापि, चालू खाता घाटा जीडीपी के 1.5 प्रतिशत नीचे है, जिसका मुख्य कारण सेवाओं से प्राप्त होने वाली आमदनी और विदेश में काम कर रहे भारतीयों द्वारा भेजे गये विप्रेषणों का स्थिर गति से समर्थन है ।

भारतीय अर्थव्यवस्था की संभावनाएँ

तात्कालिक संभावनाओं के संदर्भ में हम समग्र रूप से यह उम्मीद करते हैं कि वर्ष 2007-08 में वास्तविक जीडीपी वृद्धि लगभग 8.5 प्रतिशत रहेगी, यदि

अंतरराष्ट्रीय कच्चे तेल की कीमत में आगे बढ़ोतरी न हो और घरेलू या बाहरी आघात न लगें । वर्ष 2007-08 के लिए रिज़र्व बैंक का नीतिगत प्रयास यह होगा कि मुद्रास्फीति को 5.0 प्रतिशत पर काबू में रखा जाये । अल्पावधि संदर्भ में, भारत की अर्थव्यवस्था के विश्व-अर्थव्यवस्था के साथ विकसित होते एकीकरण और सामाजिक तरजीह को देखते हुए आगे बढ़ने के लिए संकल्प यह होगा कि मुद्रास्फीति को प्रत्याशित 4.0-4.5 प्रतिशत की सीमा में रखने के लिए अनुकूल नीति बनायी जाये ।

संपदा क्षेत्र में वृद्धि में तेजी वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिये गये ऋण के विकास-पथ में ऊर्ध्वमुखी बदलाव में प्रतिबिंबित होती है, जो पिछले तीन वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था के इतिहास में अभूतपूर्व रही है । हाल की अवधि में इसमें कुछ कमी के संकेत मिले हैं ।

बढ़ते पूँजी प्रवाह के अनुरूप आरक्षित मुद्रा में वृद्धि हाल की अवधि में ऊँचे स्तर पर रही है, जो वर्ष 2003-07 के दौरान औसतन 17.8 प्रतिशत थी । आरक्षित मुद्रा की वर्ष-दर-वर्ष वृद्धि दर जून 22, 2007 की स्थिति के अनुसार 23.0 प्रतिशत थी (एक वर्ष पहले 18.5 प्रतिशत)।

इसी प्रकार हाल की अवधि में उच्च ऋण-वृद्धि ने मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि को वर्ष 2003-07 के दौरान औसतन 16.8 प्रतिशत के ऊँचे स्तर पर रखा है । वर्ष 2006-07 में मुद्रा आपूर्ति में 21.3 प्रतिशत तक वृद्धि हुई । जून 8, 2007 की स्थिति के अनुसार मुद्रा आपूर्ति में वर्ष-दर-वर्ष वृद्धि 21.0 प्रतिशत थी (एक वर्ष पहले 18.5 प्रतिशत)।

दुनिया भर में मुद्रा आपूर्ति में उच्च विस्तार को ध्यान में रखते हुए और वर्ष 2005-07 में मौद्रिक ओवरहैंग की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण होगा कि मुद्रा प्रसार को वर्ष 2007-08 के दौरान लगभग 17.0-17.5 प्रतिशत पर नियंत्रित रखा जाये, जो वृद्धि और मुद्रास्फीति संबंधी दृष्टिकोण के अनुरूप होगा । वर्ष 2007-08 के लिए वार्षिक नीति वक्तव्य ने भी सकल जमाराशि में वर्ष 2007-08 में वृद्धि का लक्ष्य 4,900 बिलियन रुपये के आसपास और खाद्येतर ऋण में अंशांकित कमी वर्ष 2007-08 में 24.0-25.0 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा है ।

मध्यावधि के लिए ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (वर्ष 2007-08 से 2011-12) के लिए दृष्टिकोण-पत्र में औसत वार्षिक वृद्धि-दर का लक्ष्य 9 प्रतिशत रखा गया है, जबकि दसवीं योजना (वर्ष 2002-03 से 2006-07) में औसत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य 8 प्रतिशत रखा गया था । वृद्धि की इस आकांक्षा के लिए निवेश में महत्वपूर्ण वृद्धि अपेक्षित होगी और इसे दसवीं पंचवर्षीय योजना के 27.8 प्रतिशत से बढ़ाकर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में 35.1 प्रतिशत करना होगा ।

यह महसूस करते हुए कि वृद्धि का लाभ और भी नीचे तक पहुँचाने की आवश्यकता है, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में नीति की पुनर्संरचना का अवसर दिये जाने की संभावना है, ताकि एक नया विजन, जो द्रुततर, अधिक व्यापक आधार वाला और वृद्धि को शामिल करने वाला हो, प्राप्त किया जा सके । इस संदर्भ में कृषि जीडीपी को दुगुना करके 4 प्रतिशत के आसपास रखना खास महत्व रखता है । दृष्टिकोण-पत्र में सुझाव दिया गया है कि इसे नीतियों के साथ जोड़ा जाये, ताकि कृषीतर नियोजन में तेज वृद्धि को प्रोत्साहन मिले, जिससे कि 11वीं योजना में 70 मिलियन रोजगार के अवसर पैदा किये जा सकें ।

अभी हाल में मई 29, 2007 को हमारे माननीय प्रधानमंत्री ने 11वीं योजना अवधि में कृषि की वृद्धि दर को दुगुना करके उसे 4.0 प्रतिशत करने के लिए एक बड़ी योजना की घोषणा की । राज्यों द्वारा आरंभ की गयी कृषि संबंधी नयी पहल के लिए सरकार 250 बिलियन रुपये देगी । एक समयबद्ध खाद्य सुरक्षा मिशन की भी घोषणा खाद्य-उत्पादों की बढ़ती कीमतों को रोकने और तीन वर्षों में उनकी उपलब्धता में दृश्य परिवर्तन सुनिश्चित करने के लिए की गयी ।

यदि ये लक्ष्य प्राप्त कर लिये जाते हैं, तो योजना अवधि के अंत तक गरीबों का प्रतिशत 10 प्रतिशत अंक कम किया जा सकेगा । दृष्टिकोण-पत्र में संकेतित नीति संबंधी सुधार और अनुश्रवणीय लक्ष्य, खासकर शिक्षा, स्वास्थ्य, महिलाएँ और बच्चे, आधारभूत संरचना, जब प्राप्त कर लिये जायेंगे, तब आबादी का एक बड़ा हिस्सा काफी लाभान्वित होगा । यह भारत के विकास की प्रक्रिया को और अधिक समावेशक और टिकाऊ बनाने में मदद करेगा ।

वित्तीय क्षेत्र

सुधार-पूर्व अवधि की वित्तीय प्रणाली, वर्ष 1991 के पहले, मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले ढाँचे में योजनाबद्ध विकास की आवश्यकता को पूरा करती थी, जिसमें सरकारी क्षेत्र की आर्थिक कार्यकलाप में अहम भूमिका होती थी । सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज-दर कृत्रिम रूप से न्यून स्तर पर रखी जाती थी, जिनका कोई संबंध बाजार की स्थिति से नहीं होता था । नियंत्रित ब्याज-दर की प्रणाली उधार और जमा-पक्षों में ब्योरेवार निर्धारणों से विशेषित होती थी, जिसके चलते ब्याज दरों में विविधता और जटिलता आ जाती थी । जैसाकि अपेक्षित है, उन वर्षों में वित्तीय क्षेत्र का वातावरण खंडित एवं अर्धविकसित वित्तीय बाजारों के साथ-साथ वित्तीय लिखतों की कमी से भी विशेषित होता था । परिणामस्वरूप, अस्सी के दशक के अंत तक कतिपय क्षेत्रों को बैंक ऋण की निर्दिष्ट और रियायती उपलब्धता बैंकों की व्यवहार्यता और लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती थी । इस प्रकार सरकार, रिज़र्व बैंक और वाणिज्यिक बैंकों के वास्तविक तुलनपत्र राजकोषीय प्राथमिकताओं से नियंत्रित होते थे, न कि वित्तीय प्रबंधन और वाणिज्यिक व्यवहार्यता के ठोस सिद्धांतों से । तब यह माना गया कि यह दृष्टिकोण, जो वैचारिक रूप से दक्षता को समन्वित दृष्टिकोण के माध्यम से बढ़ाना चाहता था, वास्तव में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और दक्षता के लिए प्रोत्साहन के अभाव का कारण बनता था ।

बैंकिंग

भारत में बैंकिंग प्रणाली में पिछले 16 वर्षों के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं । नये बैंक, नये लिखत, नये विंडो, नये अवसर आये और इन सबों के साथ नयी चुनौतियाँ आयी हैं । जबकि अविनियमन ने बैंकों के लिए आय बढ़ाने के नये क्षेत्र खोल दिये, इसने बड़ी प्रतियोगिता और परिणामस्वरूप बड़ी जोखिमों को भी अपरिहार्य बना दिया। भारत ने बैंकिंग प्रणाली को शक्ति प्रदान करने और उत्तरदायित्व और जन-विश्वास के माध्यम से इसकी सुरक्षा और सुदृढ़ता सुनिश्चित करने के लिए विवेकपूर्ण उपाय किये हैं । मार्च 2006 के अंत में अनुसूचित वाणिज्य बैंकों के लिए पूँजी पर्याप्तता अनुपात बढ़कर 12.4 प्रतिशत हो गया है, जो अंतरराष्ट्रीय मानदंडों से काफी अधिक है । वाणिज्यिक बैंकों का निवल लाभ वर्ष 2004-05 और 2005-06 के दौरान कुल आस्तियों के 0.9 प्रतिशत पर रहा है, जो वर्ष 1995-96 में मौजूद 0.16 प्रतिशत से ऊपर है । अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का कुल ऋण मेंएनपीएल का अनुपात, जो मार्च 1997 के अंत में 15.7 प्रतिशत था, वह मार्च 2006 के अंत तक स्थिर गति से कम होते हुए 3.3 प्रतिशत रह गया । वर्ष 2005-06 के दौरान निवल अनर्जक आस्तियाँ कम होकर निवल अग्रिमों के 1.2 प्रतिशत पर रह गयीं, जबकि वर्ष 2004-05 में यह 2.0 प्रतिशत पर थी । वर्ष 2006-07 के लिए अधिकांश बैंकों के लिए उपलब्ध प्रारंभिक वित्तीय परिणामों के अनुसार बैंकों के वित्तीय स्वास्थ्य में और सुधार हुआ है।

हमारे बैंकिंग क्षेत्र का सुधार दुनिया में अन्यतम रहा है, क्योंकि इसमें प्रतिस्पर्द्धा, विनियमन और स्वामित्व के व्यापक पुनर्विन्यास को गैर-विच्छेदक और किफायती ढंग से जोड़ा गया है। वास्तव में हमारा बैंकिंग सुधार ओवरहैंग समस्याओं और सार्वजनिक नीति की व्यावहारिकता का प्रबंधन करने के लिए सरकारी क्षेत्र की गतिशीलता का

एक अच्छा दिग्दर्शन है, जो घरेलू और विदेशी निजी क्षेत्र को प्रतिस्पर्द्धा करने और विस्तार के लिए समर्थ बनाता है। भारत में कोई बैंकिंग संकट उपस्थित नहीं हुआ है ।

सरकार ने राष्ट्रीयकृत बैंकों में अपना स्वामित्व घटाने के लिए कदम उठाये और उनमें निजी स्वामित्व का प्रवेश कराया, लेकिन उनके सार्वजनिक क्षेत्र वाले लक्षणों को नहीं बदला। इस दृष्टिकोण का अंतर्निहित औचित्य यह आश्वासन देता है कि रूपांतरण प्रक्रिया में सार्वजनिक क्षेत्र बैंकिंग के हितकारी लक्षण लुप्त नहीं होंगे । बैंकों के शेयरों के स्वस्थ बाजार मूल्य के कारण बैंकों में पूँजी लगाना सरकार के लिए लाभप्रद हुआ है ।

यूके मॉडल की तरह एक स्वतंत्र बैंकिंग कोड्स एंड स्टैंडर्ड्स बोर्ड ऑफ इंडिया स्थापित किया गया, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि ग्राहकों पर उचित ध्यान देने के लिए एक व्यापक आचार-संहिता विकसित होती है और उनका पालन किया जाता है । वृहत्तर वित्तीय समावेशन प्राप्त करने की दृष्टि से नवंबर 2005 से सभी बैंकों के लिए यह आवश्यक बना दिया गया है कि वे एक मूल बैंकिंग 'सादा खाता (नो फ्रिल्स)' या तो 'शून्य' या अल्पतम शेष और प्रभार के साथ रखें, जो उन खातों तक आबादी के विस्तृत हिस्से की पहुँच को आसान बना सके । बैंकों से कहा गया कि वे अपने विद्यमान व्यवहारों की समीक्षा करें, ताकि उन्हें 'वित्तीय समावेशन' के उद्देश्य के साथ संरेखित किया जा सके।

बैंक-ग्राहकों की शिकायतों का निवारण करने के लिए लोकपाल की एक योजना पंद्रह नगरों में परिचालित है । पर्यवेक्षकीय मूल्यांकन में ग्राहक सेवा को उच्च प्राथमिकता दी जाती है और रिज़र्व बैंक को विनियामक सहूलियत दी जाती है ।

रिज़र्व बैंक के भीतर पर्यवेक्षकीय ढ़ाँचे को सुदृढ़ करने की दृष्टि से एक वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड (बीएफएस) का गठन वर्ष 1994 में किया गया, जिसमें रिज़र्व बैंक के केंद्रीय बोर्ड के चुने हुए सदस्यों और अनेक पेशेवर विशेषज्ञों को शामिल किया गया, ताकि 'पर्यवेक्षण पर व्यक्तिगत ध्यान' दिया जा सके और वाणिज्यिक बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं के पर्यवेक्षण के संबंध में समेकित दृष्टिकोण सुनिश्चित हो सके । रिज़र्व बैंक ने परोक्ष निगरानी और चौकसी प्रणाली (ऑसमॉस) बैंकों के लिए वर्ष 1995 में आरंभ की, जो पूर्व चेतावनी प्रणाली के लिए और असुरक्षित संस्थाओं के प्रत्यक्ष निरीक्षण के लिए भी प्रेरक का काम करती है ।

पूँजी पर्याप्तता : त्रिपथ दृष्टिकोण

भारत में, हमारे पास 84 वाणिज्यिक बैंक हैं, जो मार्च 2006 के अंत तक वित्तीय क्षेत्र के लगभग 81 प्रतिशत (कुल आस्तियाँ) के लिए जवाबदेह हैं; 3000 से ऊपर सहकारी बैंक हैं, जो 11 प्रतिशत के लिए; और 133 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हैं, जो 3 प्रतिशत के लिए जवाबदेह हैं। उनके आकार, परिचालनों की जटिलता, वित्तीय क्षेत्र के प्रति प्रासंगिकता, वृहत्तर वित्तीय समावेशन सुनिश्चित करने की आवश्यकता और एक कुशल वितरण-तंत्र होने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इन संस्थाओं पर लागू होने वाले पूँजी पर्याप्तता मानदंडों को आर्थिक तंगी के भिन्न-भिन्न स्तरों पर बनाये रखा गया है । कोई यह कह सकता है कि हम पूँजी पर्याप्तता नियमों के संबंध में त्रिपथ दृष्टिकोण अपना रहे हैं । बैंकों में जोखिम उठाने की ललक और उनके कारोबारी दर्शन को देखते हुए, यह संभव है कि बैंक अपने दृष्टिकोण का 'स्वयं चयन' करेंगे, जो बदले में, पूरी प्रणाली पर स्थिरीकृत प्रभाव उत्पन्न करेंगे।

प्रथम पथ पर वाणिज्यिक बैंकों से अपेक्षा की जाती है कि वे बासल I ढाँचे के अनुसार ऋण और बाजार जोखिम, दोनों के लिए पूँजी रखें, दूसरे पथ पर यह अपेक्षा की

जाती है कि वे बासल I के ढाँचे के अनुसार ऋण जोखिम के लिए पूँजी रखें और बाजार जोखिम के लिए प्रतिनिधि के माध्यम से पूँजी रखें; तीसरे पथ पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के लिए न्यूनतम पूँजी अपेक्षा रखने की बात कही गयी है, जो बासल I ढाँचे के बराबर नहीं है । परिणामस्वरूप, हमारे पास प्रणालीगत महत्ववाला एक प्रमुख खंड पूर्ण बासल I ढाँचे पर, लघु खंड का एक हिस्सा अंशतः बासल I ढाँचे पर और एक और छोटा हिस्सा गैर-बासल ढाँचे पर है ।

बासल II कार्यान्वयन के लिए दिशानिर्देश जारी कर दिये गये हैं । कार्यक्रम के अनुसार भारत में परिचालनरत विदेशी बैंकों और भारत से बाहर कार्यरत भारतीय बैंकों को मार्च 31, 2008 से बासल II के अंतर्गत ऋण जोखिम के लिए मानकीकृत दृष्टिकोण और परिचालनगत जोखिम के लिए मूल संकेतक दृष्टिकोण की ओर रुख करना है । अन्य सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंकों को प्रोत्साहित किया गया है कि वे बासल II के अंतर्गत इन दृष्टिकोणों की ओर रुख इनके साथ-साथ करें, लेकिन किसी भी स्थिति में मार्च 31, 2009 तक ही वे ऐसा करें ।

वित्तीय बाजारों का विकास

1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों के पूर्व की अवधि के दौरान भारत में वित्तीय बाजार, जैसाकि मैंने पहले उल्लेख किया है, नियंत्रित ब्याज दरों, मात्रात्मक सीमा, सांविधिक पूर्वक्रय अधिकार, सरकारी प्रतिभूतियों के लिए वशवर्ती बाजार, केंद्रीय बैंक वित्तपोषण पर अधिक भरोसा, नियंत्रित विनिमय दर और चालू एवं पूँजीगत खाता पर प्रतिबंध, के चलते पहचाने जाते थे । विविध सुधारों के परिणामस्वरूप वित्तीय बाजार एक ऐसी प्रणाली की ओर उन्मुख हुए हैं, जिसकी विशेषता है बाजार नियंत्रित ब्याज और विनिमय दरें, मौद्रिक नीति के मूल्य आधारित लिखत, चालू खाता परिवर्तनीयता, चरणबद्ध पूँजीगत खाता उदारीकरण और सरकारी प्रतिभूति बाजार में नीलामी आधारित प्रणाली का होना। एक उल्लेखनीय लक्षण यह है कि सरकारी प्रतिभूति और कंपनी ऋण बाजार अनिवार्य रूप से घरेलू आधार पर प्रेरित होते हैं, क्योंकि इन बाजारों में विदेशी संस्थागत निवेशक और अनिवासी सहभागिता सीमित होती है और उन्हें विवेकपूर्ण सीमा के भीतर रखा जाता है।

रिज़र्व बैंक ने वित्तीय बाजारों के विकास में सक्रिय भूमिका निभायी है । इन बाजारों का विकास नपे-तुले ढंग से, क्रमिक रूप से और सावधानी के साथ इस तरह किया गया है, जिससे कि ये विकास अन्य बाजारों में संपदा क्षेत्र के विकास से कदम मिलाते हुए लगें । यह अनुक्रमण बाजार इंफ्रास्ट्रक्चर, प्रौद्योगिकी और बाजार प्रतिभागियों तथा वित्तीय संस्थाओं की सक्षमताओं के विकास की आवश्यकता से भी अनुप्राणित हुआ है ।

रिज़र्व बैंक ने मुद्रा बाजार के विकास को प्राथमिकता दी है, क्योंकि यह मुद्रा नीति के वित्तीय बाजारों तक संचरण तंत्र का और अंततः वास्तविक अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख सेतु होता है । रिज़र्व बैंक की विशेष दिलचस्पी सरकारी प्रतिभूति बाजार के विकास में है, क्योंकि यह बाजार भी एक अविनियमित वातावरण में मुद्रा नीति संबंधी आवेगों के कारगर संचरण में प्रमुख भूमिका निभाता है ।

जून 2000 में विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम (फेमा) के अधिनियमन द्वारा एक गुणात्मक परिवर्तन कानूनी ढाँचे में लाया गया, जिसके द्वारा व्यापार और भुगतान को सुविधाजनक बनाने और भारत में विदेशी मुद्रा बाजार के सुव्यवस्थित विकास और कार्यों के विनियमन के उद्देश्यों को पुनः परिभाषित किया गया है। कानूनी ढाँचे में विकासात्मक आयाम और सुव्यवस्था या स्थिरता, दोनों ही परिकल्पित हैं। इस विधान में सरकार को यह शक्ति प्रदान की गयी है कि यह नियंत्रणों को पुनः लागू कर सकती है, यदि लोकहित में ऐसा अपेक्षित हो। रिज़र्व बैंक ने विदेशी

मुद्रा बाजार के हाजिर और वायदा खंडों के विकास के लिए विविध उपाय किये हैं। बाजार प्रतिभागियों को अधिक लचीलापन भी स्वीकृत किया गया है, ताकि वे विदेशी मुद्रा परिचालनों के कार्य को अपने हाथ में ले सकें और अपनी जोखिमों का प्रबंध कर सकें।

मुद्रा, सरकारी प्रतिभूति और विदेशी मुद्रा बाजारों में सहबद्धता स्थापित हुई है और उसमें विकास हो रहा है । प्राथमिक बाजार में कीमत का पता लगाना पहले से अधिक भरोसेमंद है और द्वितीयक बाजार में अधिक गहनता और चलनिधि मौजूद है । सभी बाजारों में लिखतों और प्रतिभागियों की संख्या बढ़ी है, जिनमें सरकारी प्रतिभूति बाजार अधिक प्रभावशाली रहे हैं। संस्थागत और प्रौद्योगिकी संबंधी इंफ्रास्ट्रक्चर का सृजन रिज़र्व बैंक द्वारा किया गया है, ताकि परिचालनों में पारदर्शिता दिखाई पड़े और सुनिश्चित भुगतान और निपटान प्रणालियों की व्यवस्था हो ।

वर्तमान चुनौतियाँ

अल्पावधि संभावनाओं का मूल्यांकन करने में, उदाहरण के लिए वर्ष 2007-08 में, इस बात को मानना आवश्यक है कि पूर्ववर्ती वर्ष में 9.4 प्रतिशत पर जीडीपी की प्रभावशाली वृद्धि - संरचनात्मक और चक्रीय घटकों, दोनों को प्रतिबिंबित करती है, हालाँकि उनका सापेक्षिक योगदान कुछ-कुछ अपरिमाणनीय है । सामान्य रूप से सरकारी नीति और विशेष रूप से भारतीय रिज़र्व के सामने महत्वपूर्ण सवाल है अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक घटकों को सुदृढ़ बनाना, लेकिन निश्चित रूप से अर्थव्यवस्था के चक्रीय एवं अत्यधिक उथल-पुथल वाले तत्वों को संयत करना ।

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए संभावनाओं के संबंध में आशावादिता के लिए यथोचित कारण हैं, और इसे वैश्विक आधार पर माना गया है । तथापि, आज के उच्च उत्पादन वृद्धि, उल्लेखनीय मुद्रास्फीतिकारी दबाव, सतत विद्यमान वैश्विक असंतुलन, जोखिमों के पुनर्मूल्यनिर्धारण के आरंभिक संकेत और पूँजी प्रवाह की अनुभूत अस्थिरता के वैश्विक वातावरण में एक उभरती बाजार अर्थव्यवस्था की आर्थिक वृद्धि और स्थिरता से संबद्ध विषयों पर सतर्क रहने की आवश्यकता है ।

हम यह तो मानते ही हैं कि अधिकांश बड़ी उभरती अर्थव्यवस्थाओं के सापेक्ष हमारे पास अनेक महत्वपूर्ण आर्थिक ताकतें हैं, लेकिन हमारे पास दुहरे घाटे भी हैं - चालू और राजकोषीय; पूँजीगत लेखा पर अधिक अस्थिर संविभाग प्रवाह के उच्चतर अवयव, और पूँजी प्रवाह का प्रबंध करने में गंभीर नीतिगत चुनौतियाँ ।

पिछले पंद्रह वर्षों में सुधार के प्रति हमारे समग्र दृष्टिकोण की प्रमाणित सफलता के मद्देनजर वित्तीय और बाह्य क्षेत्रों में और अधिक सुधार के प्रति आनुक्रमिक, सहभागी और सुसंगत दृष्टिकोण का अनुसरण करने में काफी दम है । चूँकि यह सामान्यतः स्वीकार किया जाता है भारत में वित्तीय और बाह्य क्षेत्र यथोचित दृढ़ और समुत्थानशील हैं, इसलिए राजकोषीय क्षेत्र, कृषि, भौतिक इंफ्रास्ट्रक्चर, खासकर विद्युत और शहरी क्षेत्रों में और सार्वजनिक सेवाओं, यथा, पानी, स्वास्थ्य और शिक्षा, में और सुधार किये जाने को उच्च प्राथमिकता दी जा रही है । इन क्षेत्रों की प्रगति, मध्यावधि में, वित्तीय और बाह्य क्षेत्रों में प्रतिस्पर्द्धात्मकता और त्वरित सुधार सुसंगत एवं अविच्छेदी ढंग से बढ़ाने में मदद मिलेगी और इस प्रकार आश्वासित स्थिरता के साथ स्व-गतिवर्द्धक वृद्धि को प्रबलित किया जा सकेगा ।

अंत में मैं बैंक ऑफ रशिया के चेयरमैन इग्नातियेव को उनके आमंत्रण और आतिथ्य के लिए धन्यवाद देता हूँ। हम आशा करते हैं कि केंद्रीय बैंकिंग से संबंधित विषयों में हमारा द्विपक्षीय सहयोग और अधिक मजबूत होगा, क्योंकि हम यह महसूस करते हैं कि हमारे बीच अनेक बातें साझी हैं, जितना कि हम पहले नहीं जानते थे ।